

## International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor & UGC Approved Journal)

Website: [www.ijirset.com](http://www.ijirset.com)

Vol. 6, Issue 8, August 2017

# भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में जाति की भूमिका

Dr. Dhiraj Bakolia

Associate Professor, Dept. of Political Science, Govt. Lohia College, Churu, Rajasthan, India

### सार

जाति प्रथा किसी ना किसी रूप में संसार के प्रत्येक क्षेत्र में पाई जाती है बाबू जगजीवन राम के शब्दों में 'जाति भारतीय राजनीति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण सत्यता है' एक सामान्य भारतीय अपना सब कुछ त्याग सकता है परंतु जाति व्यवस्था में अपने विश्वास की तिलांजलि नहीं दे सकता है। जाति प्रथा भारतीय हिंदू समाज की प्रमुख विशेषताएं हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में लोकतांत्रिक प्रक्रिया के प्रारंभ होने से भारतीय समाज में स्थापित जाति प्रथा ने मतदान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना प्रारंभ कर दिया और जाति की राजनीति में भूमिका से जाति एक महत्वपूर्ण व प्रभाव कारी तत्व बनती चली गई। इस प्रकार वयस्क मताधिकार लागू करने के पश्चात जाति एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उभर कर सामने आई। 1. राजनीति में जातिवाद के प्रभाव को जाति का राजनीतिकरण कहा जा सकता है। लोकतांत्रिक राजनीति के अंतर्गत राजनीति, जाति के संगठन के माध्यम से अपना आधार दृढ़ करती है जाति ने राजनीति में अपनी भूमिका निर्वाह हेतु नवीन रूप धारण कर लिया है। सभी राजनीतिक दल सिद्धांत: जातिवाद की निंदा करते हैं किंतु जातीय धुवीकरण के माध्यम से सत्ता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। राजनीतिक दलों द्वारा प्रत्याशियों का चयन तथा सफलता की संभावना का आकलन जातीय मापदंडों से किया जाता है योग्यता व सेवा तत्वों की उपेक्षा की जाती है। मंत्रिमंडल का निर्माण करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि सभी जातियों को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाए। जातियां सरकार की निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं इसका उदाहरण है अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण, मंडल आयोग द्वारा अन्य पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षण का क्रियान्वयन। प्रशासन में भी आरक्षण के माध्यम से जाति को महत्व प्रदान किया गया है। राजनीतिक नेतृत्व का जनाधार केवल जातिगत आधार तक ही सीमित है। जातीय संघर्ष से राजनीति के अंतर्गत हिंसा का प्रवेश हो गया है और जाति एक उपलाभ पदावली बन गई है।

### परिचय

राजनीति पर जाति व्यवस्था का प्रभाव समय के साथ-साथ बढ़ रहा है लेकिन जाति व्यवस्था का रूप परिवर्तित होता रहता है। स्वतंत्रता के बाद भारत के राजनीतिक क्षेत्र में जाति का प्रभाव पहले की अपेक्षा बढ़ा है अतः भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का अध्ययन नियमानुसार किया जा सकता है-

1. जाति प्रधान राजनीतिक दलों का विकास-राजनीति के अंतर्गत सफलता प्राप्त करने के लिए जाति प्रधान राजनीतिक दलों का विकास हो रहा है। यह नेता की भावनाओं को उभार कर राजनीतिक लाभ उठाते हैं और उसी के आधार पर चुनाव जीतने का प्रयास करते हैं जैसे लोकदल पार्टी, बहुजन समाज पार्टी, समाजवादी पार्टी आदि।

2. जाति के आधार पर चुनाव क्षेत्र में उम्मीदवारों का चयन करना।

## International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor & UGC Approved Journal)

Website: [www.ijirset.com](http://www.ijirset.com)

Vol. 6, Issue 8, August 2017

- 3 राजनीतिक दलों द्वारा जातिगत आरक्षण के माध्यम से हितों को पूरा करने की होड़।
4. मंत्रिमंडल के निर्माण में जातिगत प्रतिनिधित्व जैसे ब्राह्मण ,जाट ,राजपूत ,कायस्थ ,दलित व पिछड़े आदि।
5. निर्णय प्रक्रिया में जाति की भूमिका-जातीय संगठन अपने हितों के अनुसार निर्णय करने तथा अपने हितों के प्रतिकूल होने वाले निर्णयों को रोकने हेतु निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं।
6. जाति एवं प्रशासन-भारत में प्रतिनिधि संस्थाओं के अलावा प्रशासन में भी जातिगत आरक्षण की व्यवस्था की गई है अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति के अलावा अन्य पिछड़े वर्गों को भी आरक्षण दिया गया है।
7. चुनाव प्रचार में जाति का सहारा-राजनीतिक दल एवं उम्मीदवार चुनाव प्रचार में जाति का खुलकर प्रयोग करते हैं चुनाव के समय जातीय समीकरण बैठाए जाते हैं। प्रत्येक राजनीतिक दल क्षेत्र विशेष में जिस जाति का बाहुल्य है उसमें उसी जाति के बड़े नेता का चुनाव प्रचार हेतु भेजने का प्रयत्न करते हैं।
8. जाति के आधार पर राजनीतिक अभिजनों का उदय-जो लोग जातीय संगठनों में उच्च पदों पर पहुंच गए हैं वे ही राजनीति में भी अच्छे स्थान प्राप्त करने में सफल हुए हैं ऐसे लोग राजनीति में चाहे खुलकर जातिवाद का सहारा ना लें फिर भी यह अपनी पृष्ठभूमि को नहीं भूलते। वे अपने जातीय हितों की प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पैरवी करते रहते हैं।

राजनीतिक दलों ने जब जनता को सम्मोहित करने में अपने आप को असमर्थ महसूस किया तब राजनीति का खेल खेलने के लिए नेताओं ने राजनीति में जातिवाद का सहारा लिया। दलित शोषितों के उत्थान की आड़ में जातिवाद को राजनीति का अनिवार्य अंग बना दिया। जातिवाद के कारण जहां राज्य का उद्देश्य जनकल्याण का था उसको बदलकर रख दिया उसका वास्तविक उद्देश्य विभिन्न जातियों को संतुष्ट करने का रह गया। राजनीतिक दलों ने जातियों को वोट बैंक के रूप में हमेशा प्रयुक्त किया है। अतः राजनीति में समाज व्यवस्था के दोषों को बढ़ावा देकर उसे परस्पर जाति संघर्ष एवं वैमनस्यता की आग में डाल दिया जिस पर राजनेता अपने हाथ सेंकते रहे हैं। [1] जातिवाद में लोकतंत्र की धारणा के विरुद्ध काम किया है। जाति व्यवस्था ने राष्ट्र के एकीकृत स्वरूप के लिए संकट पैदा कर दिया है। फिर भी यह सत्य है कि जाति भारत के समाज की महत्वपूर्ण इकाई जिसकी उपेक्षा करना आसान नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि जाति के नकारात्मक स्वरूप के स्थान पर सकारात्मक स्वरूप की स्थापना की जाए। रुडोल्फ के अनुसार "जाति व्यवस्था ने जातियों के राजनीतिकरण में सहयोग देकर परंपरावादी व्यवस्था को आधुनिकता में डालने का कार्य किया है।

**भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका** का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है-

### 1. जाति और निर्वाचन-

भारत के सभी **राजनीतिक** दल और उनके नेता ऊँचे स्तर में **जातिवाद** की **राजनीति** का विरोध करते रहते हैं, लेकिन **कांग्रेस** और **साम्यवादी** दलों सहित सभी दल जातिप्रस्त हैं। भारत में **निर्वाचन प्रणाली** संयुक्त है, फिर भी निर्वाचनों में प्रत्याशियों में चयन के लिए जाति एक प्रमुख तत्व है। प्रत्येक दल निर्वाचन क्षेत्र की विभिन्न जातियों की संख्या को ध्यान में रखते हुए **उम्मीदवारों** का चयन करता है।

## International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor & UGC Approved Journal)

Website: [www.ijirset.com](http://www.ijirset.com)

Vol. 6, Issue 8, August 2017

निर्वाचन में जातीय भावनाओं को उभारना गैर-कानूनी है, परन्तु फिर भी अपने-अपने उम्मीदवार को जिताने के लिए राजनीतिक दल जातीयता के आधार पर ही चुनाव प्रचार करते हैं, मतदाताओं को प्रायः जाति की शपथ दिलाई जाती है।

### 2. जातिगत आधार पर संरक्षण-

भारतीय संविधान के अन्तर्गत जातिगत आधार पर संरक्षणों की व्यवस्था की गई है। लोकसभा और विधानसभाओं के लिए जातिगत आरक्षण की व्यवस्था प्रचलित है, केन्द्र व राज्यों की सरकारी नौकरियों एवं पदोन्नति के लिए जातिगत आरक्षण का प्रावधान है। मेडिकल एवं इंजीनियरिंग कॉलेजों में विद्यार्थियों की भर्ती हेतु आरक्षण है।

### 3. जाति और राजनीतिक पद-

मन्त्रिमण्डलों का निर्माण भी, विशेषकर राज्याय स्तर पर जातीय भावनाओं से प्रभावित रहा है। जब किसी जाति को मन्त्रिमण्डल में प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हुआ या जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व नहीं मिला, तो उस जाति के विधायकों ने पृथक् बैठकों द्वारा गुटबन्दी को जन्म दिया और मन्त्रिमण्डल के अस्तित्व को अस्थिर बना दिया। मन्त्रिमण्डलों के अतिरिक्त उच्च राजनीतिक पदों के लिए भी जातीय भावनाओं का ध्यान रखा गया है। अल्पसंख्यकों (विशेषतया मुसलमानों) को प्रतिनिधित्व देने के लिए सत्तारूढ़ दल विशेष रूप से ध्यान रखता है। इस तथ्य को धर्मनिरपेक्षता और जातीय तुष्टिकरण दोनों रूपों में देखा जा सकता है; राष्ट्रपति पद के लिए प्रत्याशियों के चयन में भी यह तत्त्व विद्यमान रहा है।[2]

### 4. जातिगत आधार पर मतदान व्यवहार-

भारत में चुनाव अभियान में जातिवाद को साधन के रूप में अपनाया जाता है और प्रत्याशी जिस निर्वाचन क्षेत्र में चुनाव लड़ रहा है, उस निर्वाचन क्षेत्र में जातिवाद की भावना को प्रयः उकसाया जाता है ताकि सम्बन्धित प्रत्याशी की जाति के मतदाताओं का पूर्ण समर्थन प्राप्त किया जा सके।

मंडल आयोग के 27% आरक्षण के निर्णय के बाद 1990-91 से समाज जाति के आधार पर राजनेताओं द्वारा दो भागों में बाँटा जा रहा है और गाँवों एवं शहरों में जाति-युद्ध सा छिड़ गया है। राजनीतिक पार्टियाँ सिर्फ एक चुनावी मुद्दे पर बात करने लगी हैं- पिछड़े बनाम अगड़े का। 1993 तथा 1996 के उत्तर प्रदेश के चुनाव में तथा 1998, 99, 2004, 2009, 2014 के लोकसभा चुनावों में जातिगत राजनीति को अच्छी सफलता मिली है

### 5. जाति पर आधारित राजनीतिक संगठन-

भारत के प्रत्येक राज्य और अखिल भारतीय स्तर पर भी, जाति पर आधारित राजनीतिक संगठन हैं। तमिलनाडु टायलर्स पार्टी, महाराष्ट्र में मराठों की कृषक-मजदूर पार्टी और दलित वर्गों की रिपब्लिकन पार्टी, गुजरात की क्षत्रिय सभा, राजस्थान की राजपूत सभा और जाट सभा, केरल की नायर सर्विस सोसाइटी तथा

## International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor & UGC Approved Journal)

Website: [www.ijirset.com](http://www.ijirset.com)

Vol. 6, Issue 8, August 2017

दलितों की बहुजन समाज पार्टी आदि इस प्रकार के संगठन हैं, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राजनीति को प्रभावित करते हैं। पंजाब का अकाली दल और अखिल भारतीय मुस्लिम लीग विशुद्ध साम्प्रदायिक दल हैं जो खुले रूप से राजनीति तथा चुनावों में भाग लेते हैं।

### 6. भारतीय राज्यों में जातिगत तत्त्व-

भारतीय संघ के लगभग सभी राज्यों की राजनीति में जातिगत तत्त्वों की भूमिका है, लेकिन आन्ध्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और हरियाणा में इनका प्रभाव बहुत रहा है। बिहार उन राज्यों में है, जहाँ सबसे पहले जाति का राजनीतिकरण हुआ। वहाँ यादवों, ब्राह्मणों, राजपूतों, कायस्थों और आदिवासियों के बीच सत्ता के लिए तीव्र संघर्ष की स्थिति विद्यमान है।[3]

राजस्थान में राजपूतों और जाटों तथा हरियाणा में अहीर, जाट, राजपूत, ब्राह्मण, शैव और दलित वर्ग प्रतिद्वन्द्वी राजनीतिक शक्तियों के रूप में कार्य कर रहे हैं। गुजरात में पाटीदार और अनाविल, महाराष्ट्र में ब्राह्मण, मराठा और महार तथा केरल में एजवा और नायरो के बीच राजनीतिक द्वन्द्व है। आन्ध्रप्रदेश और कर्नाटक की तो समस्त राजनीति को ही क्रमशः कम्मा व रेड्डी और लिंगायत व वोकलिंग द्वन्द्व के सन्दर्भ में समझा सकता है। मध्यप्रदेश, असम और उड़ीसा में कांग्रेस और गैर-कांग्रेसी दलों की जोड़-तोड़ में आदिवासी कबीलों का हाथ रहा है। वामपन्थी और साम्यवादी दल भी जाति के आधार पर की जाने वाली अपील से मुक्त नहीं हैं।

### 7. जातिवाद से आच्छादित राजनीति-

प्रो. एम.एन. श्रीनिवास ने लिखा है, "शिक्षित भारतीयों में यह सुविस्तृत धारणा है कि जाति अपनी अन्तिम सांस ले रही है और नगरों में रहने वाले पश्चिमी शिक्षा प्राप्त उच्च वर्गों के सदस्य इसके बन्धन से मुक्त हैं, परन्तु ये दोनों धार-<sup>14</sup> गलत हैं। ये लोग भोजन सम्बन्धी प्रतिबन्धनों का चाहे अनुसरण न करते हों, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वे जाति के बन्धनों से पूर्णतः मुक्त हैं। आश्चर्यजनक सन्दर्भों में वे अपने जातीय व्यवहारों को प्रदर्शित करते हैं।"

### 8. जाति की सकारात्मक भूमिका-

सामान्यतया भारतीय राजनीति में जाति के प्रभाव की तीव्र आलोचना की जाती रही है और इसे राष्ट्रीयता के लिए घातक समझा जाता रहा है, लेकिन इसका एक अन्य पक्ष भी है। एक ओर तो जाति ने समाज को टुकड़ों में विभक्त करने वाले तत्त्व की भूमिका अदा की है, तो दूसरी ओर इसने संयुक्त करने वाले तत्त्व की भी भूमिका अदा की है। भारतीय समाज में जाति प्रभावपूर्ण सम्पर्क-सूत्र का कार्य और नेतृत्व और संगठन को आधार प्रदान करती है। यह उन व्यक्तियों को भी लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में भाग लेने की क्षमता प्रदान करती है जो निम्न जातियों के कहे जाते हैं।

रजनी कोठारी के शब्दों में, "कुल मिलाकर जाति और जातीय संगठनों ने भारतीय राजनीति में वही भूमिका निभाई है, जो पश्चिमी देशों में विभिन्न हितों व वर्गों के संगठनों ने।"

## International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor & UGC Approved Journal)

Website: [www.ijirset.com](http://www.ijirset.com)

Vol. 6, Issue 8, August 2017

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह कहा जा सकता है कि "जाति भारतीय राजनीति में सबसे अधिक प्रभावशाली तत्त्व है।"[4]

### विचार-विमर्श

भारतीय राजनीति में जाति एक महत्वपूर्ण और निर्णायक तत्व रही है और आज भी है। आज़ादी से पहले भी जाति ने राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्वतंत्रता के बाद से, जाति का प्रभाव कम होने के बजाय बढ़ा है, जो राष्ट्रीय एकता के लिए घातक है। सांप्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों की मांग को स्वीकार कर ब्रिटिश शासन में नस्लवाद और सांप्रदायिकता के बीज बोए गए थे। 1909 के अधिनियम ने ब्रिटिश सरकार को मुसलमानों से अलग अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करने का अधिकार दिया और फिर भारत में कई जातियों ने इसी तरह अलग प्रतिनिधित्व की मांग की। जब महात्मा गांधी द्वितीय गोलमेज़ सम्मेलन में भाग ले रहे थे, तो उन्होंने देखा कि भारत के विभिन्न जातियों के प्रतिनिधि अपनी जातियों के लिए सुविधाएँ माँग रहे थे और कोई भी राष्ट्रहित में नहीं बोल रहा था। इस निराशा में वे वापस लौट आए। अंग्रेजों ने खुले तौर पर नस्लवाद को बढ़ावा दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, कांग्रेस सरकार ने ब्रिटिश नीति का पालन किया और जातिवाद की भावना को बढ़ावा दिया। पिछड़े वर्गों को विशेष सुविधाएँ देकर कांग्रेस सरकार ने उन्हें एक अलग वर्ग बना दिया है। न केवल राजनीति में बल्कि सामाजिक, शैक्षिक और अन्य क्षेत्रों में भी नस्लवाद का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। प्रो. वी.के. एन. मेनन (V.K.N.Menon) का यह कहना सही है, कि आज़ादी के बाद से राजनीतिक क्षेत्र में जाति का प्रभाव बढ़ा है। राजनेताओं, प्रशासन के अधिकारियों और विद्वानों ने स्वीकार किया है कि गिरावट के मुकाबले जाति का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है।

प्रो. रुडोल्फ़ के अनुसार, " इस तथ्य के बावजूद कि भारतीय समाज लोकतांत्रिक राजनीति के लिए मूल्यों और तरीकों को अपना रहा है, जाति भारतीय समाज की रीढ़ है। वास्तव में, जाति एक मुख्य साधन है जिसके द्वारा भारतीय लोग लोकतांत्रिक रूप से जुड़े हुए हैं। " प्रो. मॉरिस जोन्स, ने अपने शोध के आधार पर यह कहा है कि, "राजनीति जाति से ज्यादा महत्वपूर्ण है और जाति राजनीति से ज्यादा महत्वपूर्ण है। " शीर्ष नेता एक जातिविहीन समाज के लक्ष्य का पीछा कर सकते हैं, लेकिन ग्रामीण जनता, जिन्हें लंबे समय तक वोट देने का अधिकार नहीं दिया गया है, केवल पारंपरिक राजनीति की भाषा को समझते हैं जो जाति के चारों ओर घूमती है और शहरी सीमाओं से दूर है। "स्व. जय प्रकाश नारायण ने एक बार कहा था कि, " भारत में जाति सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक दल है। जगदीश चंद्र जौहरी ने तो यहां तक कहा कि, "अगर मनुष्य को राजनीति में आगे बढ़ना है तो उसे अपनी जाति और धर्म को अपने साथ रखना होगा।" आज़ादी के बाद से जाति का प्रभाव काफी बढ़ गया है। आज भारत के लगभग सभी राज्यों में जाति का राजनीति पर गहरा प्रभाव है। प्रो. मौरिस जोन्स ने ठीक ही लिखा है कि भले ही देश के महान नेता जातिविहीन समाज का नारा बुलंद करते रहे हों, लेकिन ग्रामीण समाज के नए मतदाता केवल पारंपरिक राजनीति की भाषा जानते हैं।[5]

पारंपरिक राजनीति की भाषा जाति के इर्द-गिर्द घूमती है। रजनी कोठारी ने भी यही विचार व्यक्त किया है कि यदि जाति के प्रभाव को नज़र-अंदाज़ और अनदेखा किया जाता है, तो राजनीतिक संगठन में बाधा उत्पन्न होती है। चुनाव के दौरान उम्मीदवार का चयन करने में जातिवाद एक अन्य महत्वपूर्ण कारक है। पिछले आम चुनावों में, कांग्रेस और अन्य सभी राजनीतिक दलों ने अपने उम्मीदवारों के चयन में जातिवाद को एक प्रमुख कारक बनाया है। अधिकांश निर्वाचन क्षेत्रों में, जिस मतदाता के पास सबसे अधिक मतदाता होते हैं, उस जाति के उम्मीदवार को भारत की बहुसंख्यक आबादी निरक्षर बताती है।

भारतीय राजनीति में, जातिवाद ने राजनीतिक नेतृत्व को भी प्रभावित किया है। नेताओं का उदय और पतन जाति के कारण हुआ है। कई नेताओं ने जाति के समर्थन से अपना महत्व स्थाई बनाए हुए है। उदाहरण के लिए, हरियाणा में, राव वीरेंद्र सिंह

## International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor & UGC Approved Journal)

Website: [www.ijirset.com](http://www.ijirset.com)

Vol. 6, Issue 8, August 2017

अहीर जाति के समर्थन के कारण लंबे समय से हैं। भारत में, राष्ट्रीय दल सीधे तौर पर जाति का समर्थन नहीं कर सकते हैं, लेकिन क्षेत्रीय दल जाति का खुलकर समर्थन करते हैं और कई क्षेत्रीय दल जाति पर आधारित होते हैं। उदाहरण के लिए, तमिलनाडु में डी. एम.के.(D.M.K.) और अन्ना डी. एम.के.(A.D.M.K.) ब्राह्मण विरोधी या गैर-ब्राह्मण दल हैं। कुछ लोगों का कहना है कि चुनाव प्रचार में जाति का महत्वपूर्ण हाथ है। उम्मीदवार की जीत या हार काफी हद तक जाति-आधारित प्रचार पर निर्भर करती है। उस निर्वाचन क्षेत्र में जिस जाति का बहुमत होता है, उसका उम्मीदवार ज्यादातर चुनाव जीतता है। प्रशासन में जातियों को भी शामिल किया गया है। संविधान संसद और राज्य विधानमंडल में हरिजन और पिछड़ी जातियों के लिए सीटें आरक्षित करता है। सरकारी नौकरियों में उनके लिए स्थान भी आरक्षित करता है।

संविधान के इन अनुच्छेदों के कारण सभी जातियों को इन जातियों से जलन महसूस होना स्वाभाविक है। कर्नाटक राज्य में पहली बार काम पर रखे गए लगभग 80 फीसदी लोग हरिजन थे, जिन्होंने जाति की भावना को और मजबूत किया। 1962 में, सुप्रीम कोर्ट ने नौकरियों में इस तरह के नस्लीय भेदभाव की निंदा की और इसे संविधान का धोखा बताया। जाति की राजनीति चुनावों के साथ ही समाप्त नहीं होती, बल्कि सरकार बनाने में भी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बहुमत की पार्टी में जाति की राजनीति कैबिनेट बनाते समय किसी का ध्यान नहीं जाती है।

राज्य में प्रमुख जाति का एक नेता ही मुख्यमंत्री के रूप में सफल हो सकता है। पंजाब में, जब 1977 में अकाली दल जनता पार्टी की सरकार बनी, तो सरदार प्रकाश सिंह बादल मुख्यमंत्री बने और 1992 में, जब कांग्रेस की सरकार बनी, तो सरदार बेअंत सिंह मुख्यमंत्री बने। 2007 और 2012 में, सरदार प्रकाश सिंह बादल मुख्यमंत्री बने। कैप्टन अमरिंदर सिंह पंजाब के मुख्यमंत्री बने। हरियाणा में सरकार चाहे कोई भी दल बना ले, सिख मुख्यमंत्री नहीं बन सकता। चुनाव के समय मतदाता ज्यादातर वोट जाति के आधार पर देते हैं। वयस्क मताधिकार ने जातियों को प्रभावित करने के अवसर प्रदान किए हैं। प्रत्येक जाति अपनी संख्या के आधार पर इसके महत्व को समझती आई है। जिसके पास जितना अधिक ज्ञान होता है, उसका महत्व भी उतना ही अधिक होता है। स्वतंत्रता के बाद, गाँव में पंचायती राज की स्थापना हुई। पंचायती राज की तीन स्तरीय पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद चुनावों में जाति बहुत महत्वपूर्ण है। कभी-कभी चुनावों में, जातिवाद की भावना एक भयानक मोड़ लेती है और दंगे भड़क उठते हैं। पंचायती राज की विफलता का एक महत्वपूर्ण कारण जातिवाद है। अब हम आम चुनावों में कुछ राज्यों की भूमिका का वर्णन करते हैं –

तमिलनाडु: जबकि जाति संबद्धता हर राज्य में पाई जाती है, लेकिन यह तमिलनाडु में सबसे ज्यादा प्रचलित है यानी मद्रास। मद्रास (चेन्नई) गैर-ब्राह्मणों का एक वर्ग बन गया है। जो ब्राह्मणों के अस्तित्व के बिल्कुल विपरीत है। इस वर्ग के उदय ने द्रविड़ अंडे के आंदोलन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 1909 में मार्ले मिंटो सुधार के लागू होने के बाद भी मद्रास में सांप्रदायिकता की लहर फैल गई। 1909 से पहले, मद्रास में गैर-ब्राह्मण जाति समूहों की वहां की राजनीति में कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं थी। गैर-ब्राह्मणों के हितों की अनदेखी की गई। ब्राह्मण उच्च पदों पर बैठे थे। धीरे-धीरे गैर-ब्राह्मण जाति समूहों के बीच एक जागृति आई। श्री शंकरन नेईयर, श्री पी. खेगराओ चेटी और डॉ.टी. एम. नाइनर जैसे नेताओं ने एक गैर-ब्राह्मण आंदोलन चलाया, जिसके परिणामस्वरूप 1919 में जस्टिस पार्टी का गठन हुआ। जस्टिस पार्टी का उद्देश्य ब्राह्मणों को मद्रास में सत्ता में आने से रोकना था। गैर-ब्राह्मणों का विचार था कि यदि वर्तमान परिस्थितियों में स्व:शासन की स्थापना की जाती है, तो ब्राह्मणों का शासन स्थापित होगा। इतना ही नहीं, उन्होंने कांग्रेस पार्टी को ब्राह्मणों की पार्टी भी माना। दूसरी ओर, कांग्रेस ने जस्टिस पार्टी का विरोध किया क्योंकि जस्टिस पार्टी का लक्ष्य बहुत संकीर्ण था। जस्टिस पार्टी, मुस्लिम लीग की तरह, गैर-ब्राह्मणों और निर्वाचन क्षेत्रों के लिए एक आंदोलन शुरू किया और सफल रही। 1919 के भारत सरकार अधिनियम के तहत, प्रांतीय विधानसभा में न्याय पार्टी के लिए सीटें आरक्षित थीं। निर्वाचित क्षेत्रों में न्याय पार्टी की शक्ति में वृद्धि हुई। बाद में

## International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor & UGC Approved Journal)

Website: [www.ijirset.com](http://www.ijirset.com)

Vol. 6, Issue 8, August 2017

द्रविड़ियन कषगम की स्थापना हुई। श्री राम स्वामी नायर द्रविड़ कडगम आंदोलन के जनक थे। श्री एस.सी.एन.अन्ना दुरई उनके मुख्य सहायक थे। द्रविड़ियन कडगम पार्टी ने निचली जातियों की भावनाओं को भड़काया और उन्हें उत्तरी भारत के लोगों के खिलाफ कर दिया। 1938 में, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के नेतृत्व वाली कांग्रेस सरकार का गठन मद्रास में किया गया और हिंदी को अनिवार्य विषय बना दिया गया। जहाँ से मद्रास में हिंदी विरोधी आंदोलन शुरू हुआ। रमा स्वामी नैयर ने 72 साल की उम्र में 28 साल की लड़की से शादी की। जिस पर सी. एम. अन्नादुराई के नेतृत्व में कई लोगों ने द्रविड़ कडगम पार्टी छोड़ दी और एक नई पार्टी द्रविड़ मुन्नेत्र कडगम बनाई। अन्नादुराई ने दक्षिण और उत्तर के सवालियों के करण पार्टी का आयोजन किया।[6]

1967 में, पार्टी को बड़ी कामयाबी मिली और अन्नादुराई के नेतृत्व में द्रविड़ मुन्नेत्र कडगम की सरकार बनी। 1972 में, द्रविड़ मुन्नेत्र कडगम और एक नई पार्टी अन्नाद्रमुक का गठन हुआ। 1977, 1980 और 1985 के चुनावों में, अन्नाद्रमुक को स्पष्ट बहुमत मिला और इस पार्टी की सरकार बनी। 1991 के चुनावों के बाद, तमिलनाडु में अन्नाद्रमुक सरकार का गठन हुआ। इस प्रकार, तमिलनाडु में जातिवाद ने एक प्रमुख भूमिका निभाई है।

कर्नाटक: कर्नाटक यानि मैसूर में जातिवाद की गहरी जड़ें हैं। कर्नाटक की 30 मिलियन की आबादी में 42 जातियां हैं, जिनमें से लिंगायत और ब्राह्मणों का महत्वपूर्ण प्रभाव है। यहां विभिन्न राजनीतिक दलों, शैक्षणिक संस्थानों, जाति कोष पंचायतों आदि ने जाति को बढ़ावा दिया है। कर्नाटक में, मठ प्रबंधन सक्रिय रूप से राजनीति में भाग लेता है और चुनावों को प्रभावित करता है। राजनीतिक नेता इन धार्मिक नेताओं के साथ संबंध बनाए रखते हैं ताकि चुनाव के दौरान उनका लाभ उठाया जा सके। आज तक, केवल एक ही मुख्यमंत्री हुआ है जिसने जाति की भलाई के लिए काम किया है।

बिहार: मद्रास (चेन्नई) और कर्नाटक की तरह, बिहार की राजनीति में जाति का महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है और जारी है। डॉ. सुभाष कश्यप के अनुसार, बिहार उन राज्यों में से एक है, जहां पहली बार जाति का राजनीतिकरण किया गया था। ब्रिटिश शासन के दौरान बिहार को एक अलग प्रांत बनाने में कायस्थ जाति की आकांक्षा महत्वपूर्ण थी। इस जाति ने बिहार के सभी नागरिक संस्थानों पर अपनी संप्रभुता स्थापित की थी। कायस्थ ने शिक्षा के क्षेत्र में बहुत प्रगति की है, और अधिकांश सरकारी नौकरियों में और कानून, चिकित्सा और शिक्षण जैसे व्यवसायों में भी अपना वर्चस्व कायम किया है। ग्रामीण इलाकों में भूमिहार, राजपूत और ब्राह्मणों का वर्चस्व था। आज भी बिहार की राजनीति में जाति का प्रभाव है। राजनीतिक क्षेत्र में ब्राह्मण, खत्री और वेस का बहुत प्रभाव है। राजपूतों और भूमिहिना के बीच संबंध अच्छे नहीं रहे हैं।

हरियाणा : हरियाणा की राजनीति जाति की राजनीति से अलग नहीं है। उदाहरण के लिए, गुड़गाँव और मोहिंदरगढ़ जिलों में, अहीर, अहीर केवल उम्मीदवार के लिए वोट करते हैं, किसी और के लिए नहीं। यही बात राज्य के अन्य लोगों के अन्य जातीय समूहों पर भी लागू होती है। यह जातिगत बीमारी केवल हिंदुओं के बीच ही नहीं है, बल्कि मुस्लिम भी अपनी जाति के उम्मीदवार को वोट देते हैं। जून 1991 के विधानसभा चुनावों में जाति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उम्मीदवारों का चयन जाति के आधार पर किया गया था और मतदान भी जाति से काफी प्रभावित था।[7]

## International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor & UGC Approved Journal)

Website: [www.ijirset.com](http://www.ijirset.com)

Vol. 6, Issue 8, August 2017

पंजाब :

पंजाब में रहने वाले खत्री सामाजिक-व्यावसायिक दृष्टिकोण से पंजाब की राजनीति में अधिक प्रभावशाली रहे हैं। पिछले 30 वर्षों से, पंजाब की राजनीति जाट जाति के नियंत्रण में रही है। जाट जाति के बढ़ते प्रभाव के दो कारण हैं –

(1) गाँवों में जाटों की संख्या बहुत अधिक है और (2) सिखों का जाटों के धार्मिक मामलों पर अधिक नियंत्रण है। प्रताप सिंह कैरो, संत फतेह सिंह, गुरनाम सिंह, लखमन सिंह गिल, सभी जाट जाति के थे और आज भी जाट जाति हावी है। अकाली दल चुनावों में जाति और धर्म के नाम पर लोगों से वोट मांगता है। 1967 में विधानसभा के आम चुनावों में, अकाली दल ने शानदार जीत हासिल की और न्यायमूर्ति गुरनाम सिंह के नेतृत्व में सरकार बनाई गई। लेकिन श्रीमती इंदिरा गांधी की अकालियों और राष्ट्रीय नीति के बीच दरार के कारण, अकालियों को मध्यावधि चुनावों में ज्यादा सफलता नहीं मिली और कांग्रेस की सरकार बनी। 1977 के चुनावों में, अकाली दल को बड़ी सफलता मिली और प्रकाश सिंह बादल के नेतृत्व में, अकाली दल ने जनता पार्टी के साथ सरकार बनाई। सितंबर 1985 में, पंजाब विधानसभा चुनावों में अकाली दल को बड़ी सफलता मिली और उसके नेता और अध्यक्ष सुरजीत सिंह बरनाला मुख्यमंत्री बने। वास्तव में अकाली दल की सफलता जट्टों पर निर्भर थी।

उत्तर प्रदेश: उत्तर प्रदेश में जातिवाद का प्रभाव स्पष्ट है। जातिवाद का प्रभाव उत्तर प्रदेश के मेरठ, अलीगढ़ और कानपुर में स्पष्ट है। मेरठ जिले में जाट और त्यागी सबसे प्रभावशाली जातियां हैं। चौधरी चरण सिंह ने जाटों का नेतृत्व किया।

आंध्र प्रदेश: जाति की राजनीति आंध्र प्रदेश में एक महत्वपूर्ण आधार रही है और जारी है। आंध्र प्रदेश के चुनाव परिणाम बताते हैं कि कांग्रेस कम्युनिस्ट पार्टी और तेलुगू देशम जाति की राजनीति कर रही है। आंध्र प्रदेश डेल्टा के कुछ जिलों में, काम जाति के अधिकतम वोट प्राप्त किए जा सकते हैं। जी. एन. शर्मा (G.N.Sharma) ने लिखा, “आंध्र प्रदेश की राजनीति में जातिगत गठजोड़ और जातिगत भावनाओं का बोलबाला है।” उम्मीदवार की जाति इस बात पर निर्भर करती है कि उम्मीदवार किस हद तक जातिगत भावनाओं का शोषण और समन्वय करने में सक्षम है। अन्य राज्यों में जाति का प्रभाव काफी है। श्री हैरिसन ने अपनी पुस्तक लिखी “India, The most Dangerous Decades” ने भारत में आम चुनावों में जाति के महत्व के बारे में लिखा है। अनिवार्य रूप से, जब किसी जाति के विधानसभा क्षेत्र में जाति के कारक सामने आते हैं, तो जटिल चुनाव के अप्रत्याशित परिणाम स्पष्ट हो जाते हैं। उनके विचार में, चुनावों में जाति की निष्ठा पार्टी की भावनाओं और पार्टी की विचारधारा से पहले है। राजनीति के लिए जाति से प्रभावित होना राष्ट्रीय एकता के लिए खतरनाक है। भारत में लोकतंत्र सफल होने के लिए, चुनाव में जातिवाद के आधार को मिटाना होगा। इस आधार को समाप्त करने के उपाय निम्नलिखित हैं-

- जाति के नाम पर संचालित सभी शैक्षणिक संस्थानों से नहीं हटाया जाना चाहिए और इन संस्थानों के प्रबंधन बोर्ड में विशिष्ट जातियों के प्रतिनिधित्व को समाप्त कर दिया जाना चाहिए।
- सभी लोकतांत्रिक जाति-तटस्थ और धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक दलों को यह सुनिश्चित करने के लिए मिलकर काम करना चाहिए कि वे जातिवाद को बढ़ावा न दें।
- जाति पर आधारित राजनीतिक दलों को समाप्त किया जाना चाहिए।



## International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor & UGC Approved Journal)

Website: [www.ijirset.com](http://www.ijirset.com)

Vol. 6, Issue 8, August 2017

- विभिन्न जातियों द्वारा प्रकाशित समाचार पत्रों और पत्रिकाओं और उन पर प्रकाशित समाचारों और उन पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए जो नस्लवाद को बढ़ावा देते हैं।
- सरकार द्वारा जाति और वर्ग के आधार पर दी जाने वाली सभी सुविधाओं को तत्काल समाप्त कर दिया जाना चाहिए।[8]

### परिणाम

जय प्रकाश नारायण ने एक बार कहा था कि 'जाति भारत में अत्यधिक महत्वपूर्ण दल है।' हेरल्ड गोल्ड के शब्दों में, 'राजनीति का आधार होने के बजाय जाति उसको प्रभावित करने वाला एक तत्व है।' प्रो. वी. के. मेनन का यह निष्कर्ष सही है कि "स्वतन्त्रता के बाद भारत के राजनीतिक क्षेत्र में जाति का प्रभाव पहले की अपेक्षा बढ़ा है।"[1] मॉरिस जोन्स भी लिखते हैं कि, 'जाति के लिए राजनीति का महत्व और राजनीति के लिए जाति का महत्व पहले की तुलना में बढ़ गया है।' और विनोबा भावे के अनुसार, 'इसका एक प्रमुख कारण यह है कि 'नवीन संविधान में वयस्क मताधिकार को स्वीकार किया गया है।' जाति-व्यवस्था भारतीय समाज का एक परम्परागत पक्ष है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् संविधान और राजनीतिक संस्थाओं के निर्माण से आधुनिक प्रभावों ने भारतीय समाज में धीरे-धीरे प्रवेश करना प्रारम्भ कर दिया। आधुनिक प्रभावों के फलस्वरूप वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन प्रारम्भ हुए और जातिगत संस्थाएं यकायक महत्वपूर्ण बन गयीं क्योंकि उनके पास भारी संख्या में मत थे और लोकतन्त्र में सत्ता प्राप्ति हेतु इन मतों का मूल्य था। जिन्हें सत्ता की आकांक्षा थी उन्हें सामान्य जनता के पास पहुंचने के लिए सम्पर्क सूत्र की भी आवश्यकता थी। सामान्य जनता को अपने पक्ष में मिलाने के लिए यह भी जरूरी था कि उनसे उस भाषा में बात की जाए तो उनकी समझ में आ सके। जाति व्यवस्था इस बात को प्रकट करती थी। इस पृष्ठभूमि में जाति की भूमिका राजनीति में अधिकाधिक महत्वपूर्ण होती गयी। भारतीय राजनीति में 'जाति' की भूमिका का अध्ययन निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है-

(1) निर्णय प्रक्रिया में जाति की प्रभावक भूमिका- भारत में जातियां संगठित होकर राजनीतिक और प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। उदाहरणार्थ, संविधान में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए आरक्षण के प्रावधान रखे गए हैं जिनके कारण ये जातियां संगठित होकर सरकार पर दबाव डालती हैं कि इन सुविधाओं को और अधिक वर्षों के लिए बढ़ा दिया जाए। अन्य जातियां चाहती हैं कि आरक्षण समाप्त किया जाए अथवा इसका आधार सामाजिक-आर्थिक स्थिति हो अथवा उन्हें भी आरक्षित सूची में शामिल किया जाए ताकि वे इसके लाभ से वंचित न रह जाएं।

(2) राजनीतिक दलों में जातिगत आधार पर निर्णय- भारत में सभी राजनीतिक दल अपने प्रत्याशियों का चयन करते समय जातिगत आधार पर निर्णय लेते हैं। प्रत्येक दल किसी भी चुनाव क्षेत्र में प्रत्याशी मनोनीत करते समय जातिगत गणित का अवश्य विश्लेषण करते हैं। कोचेनेक द्वारा अपने अध्ययन के अन्तर्गत आन्ध्र, कर्नाटक, महाराष्ट्र व राजस्थान में कांग्रेस उम्मीदवारों के चयन में जातिगत आधार के अनेक उदाहरण दिए गए हैं। वस्तुतः यह के चुनाव स्थिति कम-अधिक रूप में सभी राज्यों में रही है और साम्यवादी दल सहित सभी राजनीतिक दलों द्वारा इसी व्यवहार को अपनाया गया है। सन् 1962 में गुजरात में स्वतन्त्र पार्टी की सफलता का राज उसका क्षत्रिय जाति के समर्थन में छिपा हुआ था। हरिजन मुसलमान ब्राह्मण शक्तिपुंज बनाकर ही 1971 का आम चुनाव कांग्रेस ने जीता था। मई 2007 में सम्पन्न उ. प्र. विधानसभा चुनाव मायावती ने 'अनुसूचित जाति, ब्राह्मण और मुसलमान का शक्तिपुंज' बनाकर ही जीता है। कांग्रेस सहित सभी राजनीतिक दलों में जातीय आधार पर अनेक गुट पाए जाते हैं जिनमें प्रतिस्पर्द्धा की भावना विद्यमान रहती है।[2]

(3) जातिगत आधार पर मतदान व्यवहार- भारत में चुनाव अभियान में जातिवाद को साधन के रूप में अपनाया जाता है और प्रत्याशी जिस निर्वाचन क्षेत्र में चुनाव लड़ रहा है उस निर्वाचन क्षेत्र में जातिवाद की भावना को प्रायः उकसाया जाता है ताकि सम्बन्धित प्रत्याशी की जाति एक मतदाताओं का पूर्ण समर्थन प्राप्त कर सके। उत्तर प्रदेश के चुनावों में चरण सिंह की सफलता सदैव ही जाट जाति के मतों की एकजुटता पर निर्भर रही है। उत्तर प्रदेश में मुलायम सिंह तथा बिहार में लालू प्रसाद यादव अपनी

## International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor & UGC Approved Journal)

Website: [www.ijirset.com](http://www.ijirset.com)

Vol. 6, Issue 8, August 2017

जाति के नेता के रूप में नवें दशक की राजनीति में उभरे तथा आगे चलकर वे कुछ सीमा तक अन्य पिछड़ी जातियों का समर्थन प्राप्त करने में सफल रहे। केवल के चुनावों में साम्यवादी और मार्क्सवादी दलों ने भी वोट जुटाने के लिए सदैव जाति का सहारा लिया है। मतदान व्यवहार के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि चुनाव के अन्तर्गत कोई महत्वपूर्ण प्रश्न या समस्या सामने हो तो फिर जाति के तत्व का प्रभाव बहुत कम हो जाता है। 1971 के लोकसभा चुनाव, 1977 के लोकसभा चुनाव, 1980 के लोकसभा चुनाव तथा दिसम्बर 1984 के लोकसभा चुनाव में यही स्थिति थी। नौवीं लोकसभा (1989) और दसवीं लोकसभा (1991) के चुनावों में देखा गया कि बिहार के अतिरिक्त अन्य किसी भी राज्य में जाति का तत्व अधिक या बहुत अधिक प्रभावशाली नहीं रहा, लेकिन इसके नितान्त विपरीत नवम्बर 1993 में उत्तर प्रदेश विधानसभा के चुनाव में जाति एक तत्व की लगभग निर्णायक भूमिका रही। इन चुनावों में पिछड़ी जातियों और अनुसूचित जातियों के बीच गठबन्धन की स्थिति बन गई तथा इस गठबन्धन ने सत्ता प्राप्त कर ली। अन्य पिछड़ी जातियों के साथ अनुसूचित जातियों के गठबन्धन की यह स्थिति अल्पकालीन रही।

ग्यारहवीं, बारहवीं, तेरहवीं और चौदहवीं लोकसभा के चुनाव में उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे कुछ राज्यों में जाति के तत्व की भूमिका और कुछ निर्वाचन क्षेत्रों में प्रभावशाली भूमिका देखी गई, लेकिन इस आधार पर यह नहीं सोचा जाना चाहिए कि जनता ने राजनीति में जातिवादी सोच को अपना लिया है। इस स्थिति का एक बड़ा कारण यह है कि राजनीतिक दल जनता के सामने कोई मुद्दे प्रस्तुत नहीं कर पाये और चुनावी राजनीति जातिवादी सोच की दिशा में प्रेरित हुई, लेकिन इस सोच को अपनाना उचित नहीं होगा कि लम्बे समय तक यही स्थिति बनी रहेगी।[9]

(4) मन्त्रिमण्डलों के निर्माण में जातिगत प्रतिनिधित्व- राजनीतिक जीवन में जातीयता का सिद्धान्त इतना गहरा धंस गया है कि राज्यों के मन्त्रिमण्डलों में प्रत्येक प्रमुख जाति का मन्त्री होना चाहिए। यह सिद्धान्त प्रान्तों की राजधानियों से प्राप्त पंचायतों तक स्वीकृत हो गया है कि प्रत्येक स्तर पर प्रधान जाति को प्रतिनिधित्व मिलना ही चाहिए। यहां तक कि केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में भी हरिजनों, जनजातियों, सिखों, मुसलमानों, ब्राह्मणों, जाटों और राजपूतों को किसी-न-किसी रूप में स्थान अवश्य दिया जाता है।

(5) जातिगत दबाव समूह- मेयर के अनुसार, “जातीय संगठन राजनीतिक महत्त्व के दबाव समूह के रूप में प्रवृत्त हुए हैं।” प्रो. जे. सी. जौहरी के अनुसार, “जातिगत दबाव समूह अपने निहित स्वार्थ एवं हितों की पूर्ति के लिए नीति निर्माताओं को जिस ढंग से प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं उससे तो उनकी तुलना यूरोप और अमरीका में पाए जाने वाले ऐच्छिक समुदायों से की जा सकती है।”

अनेक जातीय संगठन और समुदाय जैसे तमिलनाडु में नाडार जाति संघ, गुजरात में क्षत्रिय महासभा, बिहार में यादव सभा, आदि राजनीतिक मामलों में रुचि लेने लगते हैं और अपने-अपने संगठित बल के आधार पर राजनीतिक सौदेबाजी भी करते हैं। यद्यपि देश की सभी प्रमुख जातियों को इस प्रकार पूर्णतया संगठित नहीं किया जा सका है। मगर जो जातियां इस प्रकार संगठित नहीं हो सकीं, वे राजनीतिक सौदेबाजी में सफल नहीं रहीं और उनके सदस्यों को अपनी आवाज उठाने के लिए उपद्रव और तोड़-फोड़ का सहारा लेना पड़ा।[3]

(6) जाति एवं प्रशासन- लोकसभा और विधानसभाओं के लिए जातिगत आरक्षण की व्यवस्था प्रचलित है। केन्द्र एवं राज्यों की सरकारी नौकरियों एवं पदोन्नतियों के लिए जातिगत आरक्षण का प्रावधान है। मेडिकल एवं इंजीनियरिंग कॉलेजों में विद्यार्थी की भर्ती हेतु आरक्षण के प्रावधान मौजूद हैं। 8 सितम्बर 1993 से केन्द्र सरकार की सेवाओं में अन्य पिछड़े वर्गों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण लागू हो गया है। ऐसा भी माना जाता है कि भारत में स्थानीय स्तर के प्रशासनिक अधिकारी निर्णय लेते समय अथवा निर्णयों के क्रियान्वयन में प्रधान और प्रतिष्ठित अथवा संगठित जातियों के नेताओं से प्रभावित हो जाते हैं।

(7) राज्य राजनीति में जाति- माइकेल ब्रेचर के अनुसार अखिल भारतीय राजनीति की अपेक्षा राज्य स्तर की राजनीति पर जातिवाद का प्रभाव अधिक है। यद्यपि किसी भी राज्य की राजनीति जातिगत प्रभावों से अछूती नहीं रही है तथापि बिहार, उत्तर

## International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor & UGC Approved Journal)

Website: [www.ijirset.com](http://www.ijirset.com)

Vol. 6, Issue 8, August 2017

प्रदेश, केरल, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, हरियाणा, राजस्थान और महाराष्ट्र राज्यों की राजनीति का अध्ययन तो बिना जातिगत गणित के विश्लेषण के कर ही नहीं सकते। उत्तर प्रदेश और बिहार तो जातिगत राजनीति की मिसाल बन चुके हैं। बिहार की राजनीति में राजपूत, ब्राह्मण, कायस्थ और जनजातियाँ प्रमुख प्रतिस्पर्धी जातियाँ रही हैं तथा गत पच्चीस वर्षों में तो बिहार की समस्त राजनीति अगड़ों और पिछड़ों के बीच तीव्र संघर्ष में परिणत हो गई है। राजनीतिक और आर्थिक हितों की यह प्रतिस्पर्द्धा अनेक बार खूनी संघर्षों को जन्म दे देती है। मुसलमानों में भी अगड़ों और पिछड़ों की स्थिति बन गई है। इसके साथ ही पिछड़े मुसलमानों के भी अलग-अलग संगठन बन गए हैं। पसमांदा मुस्लिम महाज और आल इण्डिया बैकवर्ड मुस्लिम मोर्चा – ऐसे कुछ प्रतिस्पर्धी मुस्लिम संगठन हैं, जिनमें समय-समय पर खूनी संघर्ष की स्थिति बन जाती है। केरल में साम्यवादियों की सफलता का राज यही है कि उन्होंने 'इजवाहा' जाति को अपने पीछे संगठित कर लिया। आन्ध्र प्रदेश की राजनीति काम्मा और रेड्डी जातियों के संघर्ष की कहानी है। महाराष्ट्र की राजनीति में मराठा, ब्राह्मणों और महारों में प्रतिस्पर्द्धा रही है। गुजरात की राजनीति में दो ही जातियाँ प्रभावी हैं— पाटीदार और क्षत्रिय केरल की राजनीति अपने तीन समुदायों के इर्द-गिर्द घूमती रही है— हिन्दू, क्रिश्चियन और मुसलमान। केरल की राजनीति में अन्तिम दो प्रमुख राजनीतिक शक्तियों के रूप में सक्रिय हैं। कहने को तो वहाँ सही प्रकार के राजनीतिक दल हैं, किन्तु उन्हें ध्यानपूर्वक देखा जाए तो पता चलेगा कि वे सब जातीय संगठन हैं। मुस्लिम लीग मुसलमानों की है, दोनों केरल कांग्रेस के अधिसंख्य सदस्य ईसाई हैं। रा. प्रा. मो. नायर लोगों की संस्था है। कांग्रेस (इ) और दोनों साम्यवादी दलों में एजवा जाति के अलावा हिन्दुओं के कुछ प्रमुख वर्गों का प्रभाव देखा जा सकता है। राजस्थान की राजनीति में जाट राजपूत जातियों की प्रतिस्पर्द्धा प्रमुख रही है। संक्षेप में, राज्यों की राजनीति में 'जाति' का प्रभाव इतना अधिक हो रहा है कि टिककर जैसे विद्वानों ने विचार व्यक्त किया है कि "भारत के बहुत बड़े भाग में आगे आने वाले अनेक वर्षों तक राज्यों की राजनीति जातियों की राजनीति बनी रहेगी।"

एक विशेष बात यह है कि संविधान के अन्तर्गत जातिगत आधार पर आरक्षण और संरक्षणों की जो व्यवस्था की गयी है "उसने जाति को और प्रभावशाली बनाया है तथा राजनीति पर जाति की पकड़ और गहरी हो गयी है।" वस्तुतः जातियों को राजनीतिक आधार पर दिए गए सभी विशेष अधिकारों से वंचित कर दिया जाना चाहिए, क्योंकि ये प्रतिबन्ध समतावादी समाज की धारणा को आघात पहुंचाते हैं। इस सम्बन्ध में जैसा कि श्रीनिवासन ने कहा, "इन विशेष उपबन्धों से बहुत अधिक लाभ प्राप्त करने वाली जातियाँ पिछड़ेपन के विशेषाधिकार को छोड़ने की अनिच्छा प्रदर्शित करती हैं।" थोड़े समय के लिए इन व्यवस्थाओं की भले ही आवश्यकता रही हो, लेकिन और अधिक समय तक इन्हें जारी रखना भारतीय लोकतन्त्र के हित में नहीं होगा।

### निष्कर्ष

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय राजनीति का आधुनिक स्वरूप विकसित हुआ। अतः यह संभावना व्यक्त की जाने लगी कि देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित होने पर भारत से जातिवाद समाप्त हो जायेगा लेकिन ऐसा नहीं हुआ बल्कि जातिवाद ने न केवल समाज में बल्कि राजनीति में भी प्रवेश करके उग्र रूप धारण कर लिया है। भारत में जातिवाद ने न केवल यहाँ की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक प्रवृत्तियों को ही प्रभावित किया है, बल्कि राजनीति को भी पूर्ण रूप से प्रभावित किया है। भारत की राजनीति में जाति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। केन्द्र ही नहीं राज्यस्तरीय राजनीति भी जातिवाद से प्रभावित है, जो लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए बहुत ही खतरनाक है, क्योंकि इसके कारण राष्ट्रीय एकता एवं विकास मार्ग अवरुद्ध हो रहा है।[4]

राजनीति में जातिवाद सर्वोपरि

भारतीय राजनीति के प्रमुख मुद्दों में जातिवाद सर्वोपरि है, जातिवाद किसी न किसी प्रकार हमारी राजनीति को प्रभावित करती है, संविधान निर्माण के समय से ही इनमें कुछ सुधार किये जा रहे हैं, कभी किन्हीं राजनेताओं के द्वारा तो कभी सुधार प्रस्ताव के द्वारा जातिवाद नामक मानसिकता को सुधारने का प्रयास किया जाता रहा है। इसका गवाह इतिहास स्वयं है, आज राजनीति में या

## International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor & UGC Approved Journal)

Website: [www.ijirset.com](http://www.ijirset.com)

Vol. 6, Issue 8, August 2017

मनुष्य के जीवन को यदि सबसे ज्यादा प्रभावित कुछ करता है, तो वह है " जातिवाद " इसकी जड़ें प्राचीनकाल से ही इस कदर भारतीय राजनीति में जमी हुई हैं कि इसे निकाल फेंकने का प्रयास भर मानव मात्र कर पाया है। तमाम प्रयासों के बावजूद भी भारतीय राजनीति में अपनी जड़ों को जमाये हुए हैं, जो वर्तमान राजनीति में एक भयंकर बीमारी प्रतीत होता है। हमारे समाज में एक बड़ी ही व्यापक और मुख्य भूमिका अति पिछड़ों तथा दलितों की है, दलितों का हमारे जीवन में प्राचीन काल से ही विशेष भूमिकाएँ रही हैं, ये समाज के ऐसे वर्ग हैं, जो अपना एक अलग महत्व रखते हैं, अब प्रश्न ये है कि ये दलित आये कहाँ से इसकी जड़ में जातिवाद है। भारत में ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व में जातिप्रथा किसी न किसी रूप में व्याप्त है, जो एक गंभीर सामाजिक कुरीति है।

वर्ण व्यवस्था

वैदिक काल में वर्ग - विभाजन किया जाता था , जिसे वर्ण व्यवस्था कहा जाता था। यह जातिगत न होकर गुण एवं कर्म पर आधारित था। समाज चार वर्गों में विभाजित था। ब्राह्मण धार्मिक तथा वेदों से जुड़े कार्य करते थे। क्षत्रिय को देश की रक्षा तथा प्रशासन से जुड़े कार्य का दायित्व था। वैश्य कृषि और व्यापार से जुड़े कार्य करते थे, तथा शूद्र को इन तीनों वर्गों की चाकरी करनी पड़ती थी। वर्ण व्यवस्था और जाति - व्यवस्था में सबसे बड़ा अंतर यह है कि वर्ण का निर्धारण व्यवसाय से होता था, जबकि जाति का निश्चय जन्म से होता था। इस प्रकार जाति प्रथा भ्रष्ट सिद्ध होती गई। प्रो. रुडोल्फ के अनुसार भारत राजनीतिक लोकतंत्र के संदर्भ में जाति वह धुरी है, जिसके माध्यम से नवीन मूल्यों और तरीकों की खोज की जा रही है। यथार्थ में यह एक ऐसा माध्यम बन गयी है कि इसके जरिए भारतीय को लोकतांत्रिक राजनीति की प्रक्रिया से जोड़ा जा सकता है। प्रो. रजनी कोठारी अपनी पुस्तक "कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स" में भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का विस्तृत विश्लेषण किया है। उनका मत है कि बार बार यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या भारत में जातिप्रथा खत्म हो रही है? इस प्रश्न के पीछे यह धारणा है कि मानो जाति और राजनीति परस्पर विरोधी संस्थाएँ हैं।

जाति और राजनीति में आपसी संबंध

भारत में जाति और राजनीति में आपसी संबंध को समझने के लिए चार प्रमुख बिन्दुओं को समझना आवश्यक है:[5]

1. भारत में सामाजिक व्यवस्था का संगठन ही जाति के आधार पर हुआ है। राजनीति केवल सामाजिक संबंधों की अभिव्यक्ति मात्र है, इसलिए सामाजिक व्यवस्था राजनीति का स्वरूप निर्धारित करती है।
2. लोकतांत्रिक समाज में राजनीतिक प्रक्रिया जातीय संरचनाओं को इस प्रकार प्रयोग में लाती है, ताकि उनका सहयोग और समर्थन के द्वारा अपनी राजनीतिक स्थिति को और भी अधिक मजबूत बना सके।
3. भारतीय राजनीति सदैव ' जाति ' के इर्द - गिर्द घूमती है, यदि किसी व्यक्ति विशेष को राजनीति में सफलता चाहिए तो वह किसी संगठित जाति का सहारा लेता है।
4. वर्तमान में जाति विशेष का संगठन ही ज्यादातर राजनीति में भाग ले रही है। अतः स्पष्ट है कि वर्तमान में जाति का विशेष महत्व राजनीति में है। समाज के विभिन्न वर्गों तथा जातियों का समर्थन पाने के लिए राष्ट्रीय आंदोलन के नेता उन सब संस्थानों के खिलाफ थे।

## International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor & UGC Approved Journal)

Website: [www.ijirset.com](http://www.ijirset.com)

Vol. 6, Issue 8, August 2017

भारतीय राजनीति में जातिवाद जिनकी प्रवृत्ति भारतीय जनता को विभाजित करने की थी। लोगों द्वारा विशाल जनसभाओं और सत्याग्रह संघर्षों में सामूहिक रूप से भाग लेने से जाति चेतना बिल्कुल कमजोर गयी थी, जो लोग एकजुट होकर स्वतंत्रता और समानता के नाम पर अंग्रेजी शासन से आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे, वे जाति व्यवस्था का समर्थन कैसे कर सकते थे। इस प्रकार आरंभ से ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और वस्तुतः संपूर्ण राष्ट्रीय आंदोलन जातिगत विशेषाधिकारों का विरोधी रहा। कांग्रेस ने जाति, लिंग और धर्म के भेदभाव के बिना मानव जाति के विकास के लिए समान नागरिक अधिकारों तथा समान स्वतंत्रता के लिए हमेशा संघर्ष किया।

बाबा साहब का योगदान

दलितों के मसीहा कहे जाने वाले बाबा साहब भीम राव अम्बेडकर जो स्वयं एक दलित थे, उन्होंने अपना सारा जीवन जातिगत जुल्म के खिलाफ लड़ने में लगा दिया। उन्होंने अखिल भारतीय दलित वर्ग संघ (All Indian Depressed Classes Federation) की स्थापना इसी उद्देश्य से की ताकि दलितों में जागृति की भावना को विकास हो अनुसूचित जनजातियों के कई अन्य नेताओं ने अखिल भारतीय दलित वर्ग परिषद् (समिति) की स्थापना की दक्षिण भारत में गैर ब्राह्मणों ने बीसवीं सदी के तीसरे दशक के दौरान ब्राह्मणों द्वारा अपने उपर लादी गई अन्यायताओं के खिलाफ संघर्ष करने के लिए "आत्मसम्मान" आंदोलन चलाया। सारे भारत में मंदिर प्रवेश पर रोक तथा इसी तरह के अन्य प्रतिबंधों के विरोध में दलित जातियों ने अनेक सत्याग्रह आंदोलन चलाये। डॉ. बी. आर. अम्बेडकर अपनी मृत्यु के बाद दलितों के लिए एक आदर्श के रूप में उभरे हैं दलितों को इससे काफी लाभ मिला है। वे इनके लिए एक उदाहरण और प्रेरणा दोनों ही रहे हैं। वे उच्च कोटी के बुद्धिजीवी थे, जिन्होंने उच्च जातियों द्वारा बनाये गये धरे को तोड़ा तथा उनकी मृत्यु के कई दशकों के बाद भी आम्बेडकरवादी उनके सपनों को साकार करने में लगे हुए हैं। अम्बेडकर के व्यक्तित्व ने पूरे देश में दलितों को एक सूत्र में बाँध रखा है।

भारत में सामाजिक सुधार

परंपरागत भारतीय समाज में जाति - व्यवस्था की संपूर्ण संरचना इस प्रकार थी जिसमें ब्राह्मणों की स्थिति सर्वोच्च थी, लेकिन आज सामाजिक व्यवस्था की रूप - रेखा राज्य के द्वारा बनाए गए कानूनों द्वारा निर्धारित होती हैं। आधुनिक मूल्यों के उदय के साथ ही धार्मिक विश्वास स्वयं ही लौकिक जीवन से दूर हट रहे हैं। व्यक्तियों को संविधान द्वारा समानता का अधिकार दिया गया है। अतः व्यक्ति की स्थिति का निर्धारण आज जातिगत स्थितियों से न होकर उसकी योग्यता और कुशलता के आधार पर हो रहा है। जाति व्यवस्था की संरचना स्तरण में जिन व्यक्तियों को अस्पृश्य दलित अथवा अंत्यज मानकर समस्य अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। उनकी स्थिति में आज काफी परिवर्तन हुआ है। [6]

महात्मा गांधी और अम्बेडकर के प्रयत्नों से इन व्यक्तियों को समान अधिकार ही नहीं दिये गये, बल्कि सभी सरकारी नौकरियों व राजनीतिक संस्थाओं में उनके लिए स्थान भी आरक्षित कर दिये गए हैं, जिससे उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार हो सके। समकालीन भारत में अन्तर्जातीय विवाहों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। विधवा विवाह को अधिक से अधिक प्रोत्साहन दिया जा रहा है, कानूनों द्वारा ऐसे विवाहों को मान्यता दे दी गई है।

पारंपरिक जाति - व्यवस्था में प्रत्येक जाति अपने से निम्न जाति के लोगों से छुआ छूत का भेदभाव रखते थे तथा उनके द्वारा स्पर्श किये गए भोजन को ग्रहण नहीं करती थी। जबकि वर्तमान में जातिगत भेद भाव का यह आधार लगभग समाप्त ही हो गया है। आजकल शहरों में सैकड़ों व्यक्ति एक साथ फैक्ट्रियों और अन्य कार्य स्थलों में काम करते हैं और अवकाश के समय सब साथ बैठकर भोजन करते हैं। होटल, जलपानगृहों तथा विवाह या अनेकों उत्सव में भी सभी जातियों के व्यक्ति उस भोजन को ग्रहण करते हैं जिसे किसी अज्ञात जाति के व्यक्ति द्वारा बनाये गए हों जिनका स्पर्श करना भी जाति व्यवस्था द्वारा कभी वर्जित था।

## International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor & UGC Approved Journal)

Website: [www.ijirset.com](http://www.ijirset.com)

Vol. 6, Issue 8, August 2017

जाति व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का यह कहना था कि वह अपनी जाति के सदस्यों से ही अधिकतम संपर्क बढ़ाए उच्च जातियों की श्रेष्ठता में विश्वास रखे और निम्न जातियों से दूरी बनाए रखे। आज बहुत से उच्च जातियाँ अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए उन सभी व्यक्तियों से संपर्क स्थापित करती हैं।

जाति व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक जाति का व्यवसाय जन्मजात से ही निश्चित होता था। वर्तमान समय में काम के आधार पर जाति का आधार लगभग समाप्त हो चुका है। शहरों में सभी जातियों के व्यक्ति अपने - अपने अलग व्यवसाय में लगे होते हैं, अब व्यवसायिक जीवन की गतिशीलता ने सभी जातियों को समान जीविकोपार्जन का अवसर प्रदान किया है।

माननीय सुप्रीम कोर्ट के न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह महोदय ने इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ के निर्णय में लिखा है: भारतीय संविधान ने जाति व्यवस्था को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया है और इसने विधि के समक्ष लोगों में समता का आश्वासन दिया है। संविधान के अनुच्छेद 15 (2) और 16 (2) के अधीन जाति के प्रति निर्देश केवल इसे समाप्त करने के लिए ही है। इसी निर्णय में आगे लिखा गया है कि अब जाति व्यवस्था, जिसे संविधान के रचयिताओं ने समाप्त कर दिया है, विभिन्न रूपों में अपना धृणित सिर उठाने का प्रयत्न कर रही है।

### जाति और चुनाव समीकरण

भारत में 1952 में पहली बार जब लोकसभा चुनाव हुआ था तब उस समय की राजनीति में दलितों की कोई खास भागीदारी नहीं थी। राजनीति में दलित और आदिवासियों की वोट की ताकत का महत्व का एहसास नहीं था भारत में चुनाव अभियान में जातिवाद को साधन के रूप में अपनाया जाता है और प्रत्याशी जिस निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव लड़ रहा होता है, उस क्षेत्र में जातिवाद की भावना को प्रायः उकसाया जाता है, ताकि संबंधित प्रत्याशी की जाति के मतदाओं का पूर्ण समर्थन प्राप्त किया जा सके। [7]

सभी राजनीतिक दलों द्वारा यह माना जाता है, कि राज्यस्तरीय मंत्रिमण्डलों में प्रत्येक प्रमुख जाति का मंत्री अवश्य होना चाहिए। केवल प्रांतीय स्तर पर ही नहीं बल्कि ग्राम पंचायती स्तर भी यह भावना काम करती है। मेयर के अनुसार जातीय संगठन राजनीतिक महत्व के दबाव समूह के रूप में प्रवृत्त हैं।

कोई भी राज्य ऐसा नहीं है, जहाँ पर राजनीति जातिवाद से प्रभावित नहीं हो रही केरल, तमिलनाडु, राजस्थान, हरियाणा, बिहार, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र आदि सभी राज्यों की राजनीति पर जातिवाद स्पष्ट रूप से हावी है। जाति के आधार पर भेदभाव भारत में स्वतंत्रता से पहले भी विद्यमान था, लेकिन स्वतंत्रता के बाद प्रजातंत्र की स्थापना होने से समझा गया कि जातिगत भेद समाप्त हो जायेगा, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। राजनीतिक संस्थाएँ भी जातिगत से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकीं। फलस्वरूप जाति का भारत में राजनीतिकरण हो गया।

### जातिवाद देश के विकास में बाधक

जाति का राजनीतिकरण भारत के आधुनिकीकरण के मार्ग में बहुत बड़ा बाधक सिद्ध हो रहा है, क्योंकि जाति को राष्ट्रीय एकता, सामाजिक सद्भाव एवं समरसता का निर्माण करने हेतु आधार नहीं बनाया जा सकता। वैसे तो संविधान द्वारा अस्पृश्यता को लेकर अनेकों कानून बनाए गए, परन्तु जाति - विहीन समाज की स्थापना संविधान की अंतरात्मा नहीं बन पाई। अस्पृश्यता समाप्त कर दी गई परन्तु जाति व्यवस्था स्वयं बनी रही।

## International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor & UGC Approved Journal)

Website: [www.ijirset.com](http://www.ijirset.com)

Vol. 6, Issue 8, August 2017

अनुच्छेद 17 का अंबेडकर द्वारा किया गया प्रारूप यह था कि रैंक, जन्म, व्यक्ति, परिवार, धर्म या धार्मिक रूढ़ि और रीति - रिवाज से उत्पन्न किसी विशेषाधिकार या नियोग्यता को समाप्त किया जाता है, परंतु इसे न तो प्रारूप समिति ने स्वीकार किया और न ही संविधान सभा ने स्वीकार किया। बिना चर्तुवर्ण या जाति का नाम लिए अंबेडकर ने इन पर आधारित विशेषाधिकारों या नियोग्यताओं को समाप्त करने का प्रयास किया था, यदि उसे स्वीकार किया गया होता तो वह सामाजिक समता तथा सामाजिक न्याय की अवधारणा के ज्यादा करीब होता।

वर्तमान संविधान का अनुच्छेद -17 डॉ. के एम मुंशी के प्रारूप पर आधारित है। इसके पूर्व 1930 के दशक में मंदिर प्रवेश के लिए हरिजनों को प्रदान की जाने वाली व्यवस्था पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए अंबेडकर ने स्पष्ट किया था, कि यदि हिन्दू धर्म उनका धर्म होना है, तो उसे सामाजिक एकता का धर्म होना होगा। मात्र हिन्दू संहिता का संशोधन कर मंदिरों में प्रवेश दिलाना पर्याप्त नहीं है। आवश्यकता है कि जाति व्यवस्था तथा अस्पृश्यता के जनक चर्तुवर्ण के सिद्धांत को समाप्त किया जाय।

डॉ आर सी मजुमदार ने अपनी पुस्तक "स्ट्रगल फॉर फ्रीडम" में स्पष्ट लिखा है कि इसका मात्र संतोषजनक उत्तर यह हो सकता था कि तीन हजार वर्षों से चली आ रही पुरानी जातिवादी व्यवस्था एक दिन में समाप्त नहीं सकती और इसके लिए धीरे-धीरे प्रयास जारी रखना होगा। परंतु महात्मा गांधी सहित किसी हिन्दू नेता ने यह स्पष्ट रूप से जाति व्यवस्था के विरुद्ध विचार व्यक्त नहीं किया।

प्रत्येक राज्य में दलित अल्पसंख्यक हैं, जो विभिन्न जातियों के साथ मिश्रित जनसंख्या वाले समुदायों के लोगों के साथ रहते हैं। इसका अर्थ यह है कि चुनाव के समय वे उन निर्वाचन क्षेत्रों में भी निर्णायक प्रभाव डाल सकते हैं, संघ के सभी राज्यों में और हर राज्य के प्रत्येक जिले में 10 प्रतिशत से 20 प्रतिशत के बीच उनका वोट है। इसलिए राजनीतिक दलों को अधिकांश लोकसभा और विधानसभा निर्वाचन क्षेत्रों में दलित हितों का ध्यान रखना पड़ता है। दलित मतदाता लगभग सभी निर्वाचन क्षेत्रों के निर्णय में असरदार भूमिका निभाते हैं।

पूरे देश में दलितों को तकरीबन एक ही तरह के दमन का सामना करना पड़ा है तथा उनके साथ भेदभाव किया जाता रहा है। इस प्रकार के समान अनुभव के कारण राज्यों और राष्ट्रीय स्तर पर दलितों की एकजुट होने में मदद मिली है। पूरे देश में दलितों के साथ एक ही तरह का व्यवहार किया जाता है। इसका कारण यह है कि जाति व्यवस्था पूरे भारत में एक ही तरह से कार्य करती है। तमिलनाडु के गांवों की तरह उत्तर प्रदेश के गांवों में भी दलितों को सबसे निम्न कोटि का कार्य दिया जाता है, उन्हें उच्च जाति की बस्तियों से दूर बसने पर मजबूर किया जाता है। उन्हें दूषित जन स्रोतों से ही पानी लेने की अनुमति दी जाती है, और मंदिर में प्रवेश पर रोका जाता है। इसलिए वे गांवों जिलों और राज्यों के बीच क्षेतिज एकजूटता और जुड़ाव का विकास कर सकते हैं जातिप्रथा के कारण समाज टुकड़ों में बंट गया, व्यक्ति व्यक्ति के बीच भेदभाव बढ़ता गया, अहंकार और द्वेष के फलस्वरूप भारतवासी कभी एक नहीं हो सके, फलस्वरूप भारतवासियों को हमेशा विदेशी आक्रमणकारियों का सामना करना पड़ा। [8]

अति पिछड़े और दलित एक छोटी संख्या वाली जातियाँ हैं और इनका ठिकाना गाँव शहर में जहाँ - तहाँ फैला हुआ है, और इनकी इस अवस्था के कारण लोकतांत्रिक राजनीति में या चुनावों में इनका कोई खास योगदान नहीं रहता। ये ज्यादा समय अपनी जीविकोपार्जन की समस्याओं को सुलझाने में लगे होने के कारण ज्यादा समय राजनीतिक चुनावों को नहीं दे पाते। शिक्षा के अभाव के कारण भी इनमें कोई बड़ा राजनीतिक नेतृत्व विकसित नहीं हो पाता।

वर्तमान में धीरे-धीरे सरकारी योजनाओं के लाभ लेते हुए अब इनमें चेतना जागृत हो रही है, इनका रूझान अब शिक्षा त विकास की ओर अग्रसर हो रहा है, जिससे राजनीति में भी इनकी भागीदारी बढ़ रही है। ये धीरे-धीरे संगठित होकर एक बड़े वोट बैंक में तब्दील हो रही है। समय के साथ-साथ अब पिछड़ी जातियों को विधानसभा चुनाव में टिकट भी दिये जा रहे हैं।

## International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor & UGC Approved Journal)

Website: [www.ijirset.com](http://www.ijirset.com)

Vol. 6, Issue 8, August 2017

भारतीय समाज जातिगत भेद-भाव जैसे भयानक बीमारियों से जकड़ा हुआ है, इसका गंभीर बीमारी का निदान खोज पाना कठिन मालूम पड़ता है। यह केवल व्यक्ति व्यक्ति के बीच खाई पैदा नहीं कर रही बल्कि राष्ट्रीय एकता के मार्ग में भी बाधा पहुंचाने का कार्य कर रही है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम एन श्रीनिवास का मत है कि "परंपरावादी जाति व्यवस्था" ने प्रगतिशील और आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था को इस तरह प्रभावित किया है, कि ये राजनीतिक संस्थाएँ अपने मूलरूप में कार्य करने में समर्थ नहीं हैं। अतः देश में फैला हुआ जातिवाद समाज और राजनीति के लिए बाधक सिद्ध प्रतीत होती है।

यह दुर्भाग्य की बात है कि भारतीय राजनीति में जाति व्यवस्था इस प्रकार की स्थितियों का निर्धारण करती रही है जिससे गरीब हमेशा दलित अशिक्षित सामंतवादी उपनिवेश बने रहे। जात-पात बहुत हमारे इस समाज से यह अपेक्षा भी कैसे की जा सकती है कि समाज में व्याप्त यह भयंकर बीमारी अचानक से चमत्कारिक ढंग से ठीक हो जाय इस सच्चाई को कोई कितना भी नकारे लेकिन आज भी भारतीय जनतंत्र की राजनीति के केन्द्र में नागरिक न होकर जाति ही है।

देश के स्वतंत्र होने के बावजूद भी समाज से यह बीमारी दूर नहीं हो सकी है। भारतीय संविधान ने अस्पृश्यता को तो गैरकानूनी घोषित कर दिया, लेकिन अभी भी अस्पृश्यता समाज से मिटी नहीं इसके फलस्वरूप आज भी समाज का काफी बड़ा हिस्सा मानवाधिकारों से वंचित है। संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में यह संभावना व्यक्त की गई है कि स्वतंत्र भारत में जाति धार्मिक संप्रदाय की तरह शाश्वतता प्राप्त करेगी। [9]

चित्रम्मा बनाम डी पी आई (ए आई आर 1964 आंध्रप्रदेश 277) में गोड सारस्वत ब्राह्मण समुदाय के संप्रदाय अधिकार को मान्यता दी गई। डॉ धुर्य ने स्पष्ट किया है, कि जाति की भावना राष्ट्रीय एकता की भावना के प्रतिकूल है। न्यायमूर्ति एस बी वाड ने अपनी पुस्तक "कास्ट एण्ड लॉ" में इंगित किया है कि जाति विहित समाज की स्थापना संविधान में सकारात्मक रूप में घोषित उद्देश्य में नहीं रखा गया है। उन्होंने विचार व्यक्त किया है, कि जिस प्रकार अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता का उन्मूलन किया गया है और 44 वें संशोधन अधिनियम द्वारा संपत्ति के मूल अधिकार को समाप्त किया गया है, उसी प्रकार जाति व्यवस्था को भी उन्मूलित कर दिया जाना चाहिए था। परंतु ऐसा नहीं किया गया। यदि ऐसा किया गया होता, तो अनुच्छेद 32 जाति व्यवस्था उन्मूलन संबंधी अधिकार के विरुद्ध प्राप्त होता लोकतंत्र व्यक्ति को इकाई मानता है, न कि किसी जाति या समूह को जाति और समूह के आतंक से मुक्त रखना ही लोकतंत्र का आग्रह है।

लोकसभा तथा विधानमंडलों के लिए जातिगत आधार पर आरक्षण की व्यवस्था प्रचलित है। केन्द्र एवं राज्यों की सरकारी नौकरियों तथा पदोन्नतियों के लिए भी जातिगत आरक्षण को अपनाया गया है। दलितों और अनुसूचित जातियों को प्रत्येक स्थान पर यहाँ तक की मेडिकल और इंजीनियरिंग कॉलेजों में विद्यार्थियों की भर्तियों के लिए भी आरक्षण दिया गया है। यह कहाँ तक उपयुक्त है। आरक्षण व्यवस्था को समाप्त कर इसका आधार सामाजिक और आर्थिक स्थिति को बनाया जाय। जाति प्रथा भारत में ही नहीं अपितु विश्व के प्रत्येक देश में किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान है।

पिछड़ी जातियाँ संविधान में दी गई आरक्षण की व्यवस्था को बढ़ाने हेतु सरकार पर दबाव डालती है। स्पष्ट है कि जाति व्यवस्था में निश्चित तौर पर अनेक परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं, परंतु इन तमाम परिवर्तनों के बावजूद जाति की वंशानुगत सदस्यता स्तरण तथा इसके सजातीय विवाह संबंधी पक्षों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। भारतीय जातीय व्यवस्था आधुनिक परिवर्तनों के साथ अभी अपनी निरंतरता बनाए हुए है। समकालीन भारत में तमाम परिवर्तनों के बावजूद जाति-व्यवस्था अपने अनुकूलन की अद्भुत क्षमता एवं लोकशाही में संख्याबल की महत्ता के कारण अपनी निरंतरता को बनाए हुए है।



## International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor & UGC Approved Journal)

Website: [www.ijirset.com](http://www.ijirset.com)

Vol. 6, Issue 8, August 2017

आज भी भारत के ग्रामीण समाजों में व्यक्ति की पहचान उनकी जाति से होती है। आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति की प्राप्ति की होड़ में विभिन्न जातियाँ एकता की जगह प्रतिस्पर्द्धात्मक एकता का विकास हुआ है। शहरों में भी अपने स्वार्थ सिद्धि हेतु जातिवाद एक प्रमुख क्रियाविधि के रूप में क्रियाशील है।

सुधार के लिए सुझाव

हमारे देश के बुद्धिजीवी और राजनीतिक नेता इस संदर्भ में ईमानदारी पूर्वक एक साथ मिलकर इसे मिटाने के लिए कार्य करें। भारतीय राजनीति में जातिवादी व्यवस्था देश के विकास में बाधक है। हम सबको मिलजुल कर इसे मिटाना होगा। समाज में दबे कुचले लोगों को सही शिक्षा का अवसर देकर उन्हें साथ लेकर कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ना होगा। देश का विकास तभी संभव होगा। [10]

### संदर्भ

- 1) राजनीति का अर्थ और परिभाषा क्या है ,2001
- 2) भारतीय राजनीतिक प्रणाली एवं शासन, 2003
- 3) राजनीति विज्ञान (डॉ हरिश्चन्द्र शर्मा), 2005
- 4) राजनीतिशास्त्र और उसकी परम्परा, 1998
- 5) देशी राज्यों का विलय, 2007
- 6) भारतीय रियासतों का एकीकरण और पटेल, 1994
- 7) 'लौह' पुरुष सरदार पटेल, 1997
- 8) सुब्रत के. मित्र तथा वी.बी. सिंह. 1999. भारत में लोकतंत्र व सामाजिक परिवर्तन : राष्ट्रीय मतदाताओं का एक गहन विश्लेषण. नई दिल्ली: सेज प्रकाशन. ISBN 81-7036-809-X (India HB) ISBN 0-7619-9344-4 (U.S. HB).
- 9) सुब्रत के. मित्र, माइक एन्स्कट, क्लेमेंस स्पिएस (eds.). 2004. दक्षिण एशिया में राजनीतिक dal. ग्रीनवुड: प्रेजर.
- 10) <sup>^</sup><http://search.eci.gov.in/eresults/parties/indexSPOS.htm>, 2001